भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

चना में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबन्धन

भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान
कानपुर–208 024

चना भारत की सबसे महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। इस फसल में अनेक हानिकारक कीटों एवं व्याधियों का प्रकोप होता है। रोगों में मृदाजनित रोग जैसे उकठा, मूल विगलन तथा हानिकारक कीटों में चना फली भेदक प्रमुख हैं। इन के अतिरिक्त अनेक सूत्रकृमि (मुख्यतः जड़ गाँठ सूत्रकृमि) भी चना की फसल को हानि पहुँचाते हैं।

रोग

उकठा

इस रोग का संक्रमण देश के चना उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह रोग एक फफूंदी– *फ्यूज़ेरियम ऑक्सीस्पोरम* प्रभेद *साइसेरि* द्वारा होता है। फसल में इस रोग के लक्षण सामान्यतः संक्रमित पौधे के ऊपरी भाग में देखे जा सकते हैं। संक्रमित पौधे का ऊपरी भाग मुरझा जाता है, पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं जिससे संक्रमित पौधे दूर से ही पहचाने जा सकते हैं। अंत में पौधा पूर्ण रूप से सूखकर मर जाता है। यह पौधे को किसी भी अवस्था में संक्रमित कर सकता है, परन्तु सामान्यतः फसल की पौध अवस्था (बुवाई के 2–4 सप्ताह बाद) या फिर फसल की फूल व फली लगने वाली अवस्था में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। उकठा ग्रस्त पौधे में जड़ें प्रायः भूरी प्रतीत होती हैं। तने के निचले भाग तथा जड़ में संवहन ऊतकों का रंग भी भूरा पड़ जाता है। रोगी पौधों को उखाड़ कर उनकी जड़ों तथा तने के निचले भाग को फाड़ कर देखने पर संवहन ऊतकों में पतली भूरी धारियां देखी जा सकती हैं।

उकठा ग्रसित चना का पौधा

जड़ों के संवहन ऊतकों में भूरी धारियां

मूल विगलन

यह रोग सभी दलहनी फसलों में लगता है। जैसा कि नाम से विदित है इस रोग में संक्रमित पौधे की जड़ें गल/सड़ जाती हैं। यह रोग सामान्यतः *राइज़ोक्टोनिया* फफूंदी की दो प्रजातियों *सोलेनि* तथा *बटाटिकोला* द्वारा होता हैं। *राइज़ोक्टोनिया सोलेनि* द्वारा मूल विगलन को आर्द्र मूल विगलन कहते है क्योंकि इस में संक्रमित पौधे की जड़ें गल जाती हैं। इस रोग का संक्रमण सामान्यतः फसल की पौध अवस्था में अधिक होता है। ऐसे पौधे आसानी से उखड़ जाते हैं तथा इनकी जड़ें छूने पर गीली प्रतीत होती है। इस रोग से ग्रसित पौधे पीले दिखाई पड़ते हैं तथा मुरझाकर मर जाते हैं।

आर्द्र मूल विगलन संक्रिमित चना के पौधे

राइज़ोक्टोनिया बटाटीकोला संक्रमण द्वारा मूल विगलन को शुष्क मूल विगलन कहते हैं। यह रोग फसल की परवर्ती अवस्था में अधिक व्यापक होता है जिससे फसल को अधिक हानि होती है। इसके संक्रमण में जड़ें गल जाती हैं। रोगी पौधों में मूसला जड़ को छोड़ सभी जड़ें नष्ट हो जाती हैं और मूसला जड़ की लकड़ी भंगुर हो जाती है। भीषण संक्रमण में विगलित बाह्य त्वचा पर काले रंग के छोटे–छोटे बिन्दु देखे जा सकते हैं जो कि वास्तव में फफूंदी के *स्क्लेरोशिया* होते हैं। रोगी पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा पौधे धीरे–धीरे सूख कर मर जाते हैं। मूल विगलन से ग्रसित पौधे खेत में सामान्यतः समूहों में दिखते हैं।

चना में शुष्क मूल विगलन

चना में काला मूल विगलन रोग भी होता है। यह रोग *फ्यूज़ेरियम सोलेनि* द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप प्रायः खेत में सामान्य से अधिक नमी (जल मात्रा) रहने तथा वातावरणीय तापमान कम होने पर देखा जा सकता है। संक्रमित पौधे की जड़ें काली हो जाती हैं तथा पौधे का ऊपरी भाग पीला पड़ जाता है। अकसर संक्रमित पौधे के मूल तन्त्र में नई जड़ें भी विकसित हो जाती हैं जिस के चलते संक्रमित पौधे कमी–कभी लम्बे समय तक जीवित रह सकते हैं।

लक्षणों के आधार पर उकठा एवं मूल विगलन को पहचाना जा सकता है। संक्रमित पौधे यदि आसानी से उखड़ जायें तो यह मूल विगलन संक्रमण के लक्षण हो सकते हैं। उकठा ग्रसित पौधों में मूल तन्त्र नष्ट नहीं होता इस लिये इन पौधों को बल प्रयोग कर ही उखाड़ा जा सकता है ।

हानिकारक कीट

फली भेदक *(हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा)*

इस कीट को चना फली भेदक *(ग्राम पौड बोरर)* के नाम से भी जाना जाता है। यह कीट चना में लगने वाले कीटों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है तथा पूरे भारत में पाया जाता है। चना फली भेदक की प्रथम अवस्था की सूड़ियाँ कोमल पत्तियों को खुरच–खुरच कर खाती हैं। यह सूंड़ी 5–6 बार केंचुल उतारती है और धीरे–धीरे बड़ी होती जाती है। तीसरी अवस्था की सूड़ियाँ चना की फलियों में मुंह घुसा कर दाना खाती हैं। दाना खाने बाद सूड़ी मुंह निकाल लेती है और फिर दूसरी फली में छेदकर दाना खाती है। इस के चलते फलियों में गोल–गोल छेद बन जाते हैं। एक सूंड़ी अपने जीवन काल में 30–35 दाने खाती है। इस प्रकार यह कीट चना की फसल को बहुत हानि पहुँचाता है। अनुकूल वातावरण में इस कीट का प्रकोप अत्यधिक बढ़ जाता है।

फली में घुसती चना फली भेदक की सूंड़ी

सूत्रकृमि

भूमि में रहने वाले अनेक सूत्रकृमि चना की जड़ों पर परजीवी होते हैं। इनमें जड़ गाँठ सूत्रकृमि सबसे महत्वपूर्ण है। यह जड़ों को संक्रमित कर जड़तंत्र पर अनेक गाँठें बनाते हैं। इन गाँठों के बनने से जड़ गाँठ सूत्रकृमि के संक्रमण को पहचाना जा सकता है

चना की जड़ में जड़ गाँठ सूत्रकृमि का संक्रमण

(सूत्रकृमि संक्रमण द्वारा जड़ों में बनी गाँठ अलग नहीं की जा सकती जबकि राइजोबियम द्वारा बनाई गई गाँठें आसानी से जड़ से अलग की जा सकती हैं)। सूत्रकृमि ग्रसित पौधे प्रायः दुर्बल हो जाते हैं जिस से पौधों की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है।

निम्नलिखित एकीकृत रोग एवं कीट प्रबन्धन अपनाकर किसान चना की फसल को बचा सकते हैं :–

बुआई से पहले

- खेत की गहरी जुताई – गर्मियों (मई–जून माह) में
- गोबर की खाद अथवा नीम की निबौली के पाउडर का प्रयोग 50 कि.ग्रा./हे. की दर से
- जिन खेतों में उकठा का प्रकोप अधिक होता हो उनमें धान्य फसलों के साथ फसल चक्र अपनायें।

बुआई के समय

- समय से बुआई
- सरसों के साथ अन्तः फसल 4:2 या 4:1 अनुपात में
- उकठा अवरोधी प्रजातियों का चयन करें
- बीजोपचार – जैव नियंत्रक फफूँदी ट्राइकोडर्मा (4 ग्रा.) + वीटावेक्स (1 ग्रा.) प्रति कि.ग्रा. बीज
- सूत्रकृमि ग्रसित खेत के लिये बीजोपचार – कार्बोसल्फान (1%)।

खड़ी फसल

- खेतों का साप्ताहिक भ्रमण एवं निगरानी
- यौन रसायन आकर्षण जाल 4–5 प्रति हे.
- कीट भक्षी चिड़ियों के बैठने के अड्डे का प्रावधान (35 से 40 प्रति हे.)
- फली भेदक की आर्थिक क्षति स्तर (1 से 2 गिडार प्रति मीटर लम्बी कतार) आने पर कीटनाशी रसायनों का प्रयोग :–
  - पहला छिड़काव : नीम की निबौली का सत् – 5%
  - दूसरा छिड़काव : एन.पी.वी. विषाणु – 250 गिडार समतुल्य/हे.
  - तीसरा छिड़काव : स्पाइनोसाड 0.02% घोल (0.4 मि.ली. प्रति लीटर पानी) या इन्डॉक्साकार्ब 0.02% घोल (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी)।

चना की उकठा रोधी/सहिष्णु प्रजातियाँ

प्रजाति	क्षेत्र
के.डब्लू.आर. 108, जे.जी. 74, पूसा 372, पूसा 1003 (काबुली)	उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र
डी.सी.पी. 92–3, जी.एन.जी. 1581, जी.पी.एफ. 2, हरियाणा चना 1, पूसा 329, पूसा 362, पूसा 372, पूसा चमत्कार (बी.जी. 1053–काबुली),	उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र
जे.जी. 315, जे.जी. 16, विजय, वैभव, पूसा 372, पूसा 391, फूले जी. 12, गुजरात चना 1, जे.जी. 74, फूले जी 5 (विश्वास), विशाल, शुभ्रा, उज्ज्वल	मध्य क्षेत्र
आई.सी.सी.वी. 10 (भारती), जे.जी. 11, श्वेता (आई.सी.सी.वी. 2)	दक्षिणी क्षेत्र

उपर्युक्त उन्नत प्रजातियों, सस्य तकनीकी तथा रोग एवं कीट प्रबंधन विधियों को अपनाकर चना की प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि की जा सकती है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :
निदेशक
भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान
कानपुर – 208 024

प्रकाशक : **डॉ. एन.पी. सिंह, निदेशक**
भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर – 208 024

संकलन : डॉ. नईमउद्दीन, डॉ. मो. अकरम एवं
डॉ. (श्रीमती) हेम सक्सेना

संपादक : श्री दिवाकर उपाध्याय

प्रकाशन संख्या : 3/2014 **मुद्रित : जनवरी, 2014**

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 6565333